International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

संस्कृत वाङ्मय में मौलिक तत्त्व

डॉ. दीपमाला उपाध्याय
भूतपूर्व शोधछात्रा, साहित्य विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी, उत्तर प्रदेश,भारत।

ABSTRACT

संस्कृत साहित्य आध्यात्मिकता से अनुप्राणित सामाजिक आदर्शों का निर्मल दर्पण है। वैदिक युग में प्रादुर्भूत हुई संस्कृत वाङ्मय की धारा आज तक अविच्छिन्न गति से प्रवाहित हो रही है। किन्तु आधुनिक वैश्वीकरण के युग में आंग्ल भाषा के प्रभुत्व के समक्ष संस्कृत साहित्य का विराट स्वरूप परिसीमित हो गया है। विद्वज्जन् संस्कृत वाङ्मय को न तो पूरी तरह स्वीकार करने का साहस कर पा रहे हैं और न ही उसके औचित्य को नकार ही पा रहे हैं। इस असमंजस्य की स्थिति में संस्कृत साहित्य के मौलिक तत्त्वों की गवेषणा औचित्यपूर्ण है क्योंकि इन मौलिक तत्त्वों के सामथ्र्य से ही संस्कृत साहित्य वर्तमान चुनौतियों का सामना करते हुए अपनी प्रासंगिकता और जीवतंता को सिद्ध कर सकता है।

सर्वप्रथम 'प्राचीनता' की दृष्टि से यह साहित्य अतुल्य है। संस्कृत साहित्य लगभग चार हजार वर्षों से आर्य जाति के बौद्धिक उत्कर्ष एवं उनके संस्कृति के प्रगति का इतिहास है। विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' इसी देववाणी में प्रकट हुआ। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य लोककल्याणकारी और विश्ववारा संस्कृति का उद्घोष है। मानव संस्कृति के उषः काल में प्रादुर्भूत मानव हृदय की सुन्दरतम भावाभिव्यक्ति अर्थात् काव्य संस्कृत में ही प्रसृत हुआ। ऋग्वेद[1] के उषस् सूक्त, यमयमी संवाद सूक्त् सरमा-पणि संवाद और नासदीय सूक्त का काव्य सौन्दर्य अद्भुत और हृदयाह्लादक है। उपमालंकार का सौन्दर्य अधोलिखित ऋचा में द्रष्टव्य है-

"अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः।।"

ऋ0वे0 1.92.4

इस मंत्र में उषा की तुलना सुसज्जित नर्तकी से की गयी है। वैदिक मंत्रों में जीवात्मा एवं परमात्मा का स्वरूप विवेचन जैसा दार्शनिक विषय रूपकालंकार के माध्यम से काव्यात्मक रूप में प्रकट हुआ है-

''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्यो अभि चाकशीति।।

-ऋ0वे0 1.64.20

विश्व के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद की काव्यात्मकता की अविच्छिन्न धारा की अपेक्षा आंग्ल इत्यादि पाश्चात्य साहित्य की काव्यात्मकता सर्वथा नवीन है।

सर्वांगीणता और व्यापकता संस्कृत साहित्य का दूसरा मौलिक तत्व है। आज यह धारणा बन गयी है कि संस्कृत केवल धर्म एवं अध्यात्म की उपदेशक भाषा है। किन्तु सूक्ष्म विवेचनोपरान्त यह धारणा नितान्त निर्मूल सिद्ध होती है। संस्कृत के विशाल प्रांगण में वेद और उपनिषद् धर्म एवं दर्शन के चूड़ान्त हैं तो वात्स्यायन मुनि कृत 'कामसूत्र' में जीवन का व्यावहारिक पक्ष निरूपित हुआ है। 'अर्थशास्त्र' में जीवन की भौतिक समृद्धि एवं राजनीति विषयक गूढ़ चिन्तन किया गया है तो जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' में भक्ति की भावुकता एवं प्रेममाधुरी प्रवाहित हुई है। श्रृंगार प्रेमी व्यक्ति कालिदास के नाटकों में तृप्ति प्राप्त कर सकता है और वैज्ञानिक तत्वों का अन्वेषक आचार्य वारहमिहिर (47ई0) कृत बृहत्संहिता, भास्कराचार्य द्वितीय (1114ई0) प्रणीत् सिद्धान्तशिरोमणि, चरकसंहिता, सुश्रुत संहिता में शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- इन पुरुषार्थ चतुष्ट्य को आत्मसात करने वाले संस्कृत साहित्य के समान सर्वांगीणता अन्य साहित्य में कैसे आ सकती है? भारतीय मनीषा के चिन्तन में 'धर्म' कर्तव्य का प्रतिरूप है। तैत्तिरीयोपनिषद् में ''सत्यं वद धर्मं चर'' (1.11) कहा गया है। मनुस्मृति के अनुसार धर्म एक व्यापक नैतिक अवधारणा है जिसके अन्तर्गत धैर्य, क्षमा, संयम जैसे दस मानवीय गुणों को निबद्ध किया गया है**। (धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दाशकं धर्मलक्षणम् ।। मनु.6.92)**[2] धर्म 'लोकमंगल' की भावना है, ईश्वर के लिए कोई भी अस्पृश्य नहीं है। जैसा कि स्वयं योगेश्वर भगवान् कृष्ण[3] कहते हैं- ''हे अर्जुन, स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि चाण्डालादि जो कोई भी हो, सभी मेरे शरण में आकर परम गति को ही प्राप्त होते हैं''-

''मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।' 'गीता 9.32

संस्कृत साहित्यकार सभी प्राणियों में परमतत्व परमात्मा के अंश का दर्शन करता है- ''ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः''। (गीता 15.7) वह यह विश्वास करता है कि परमात्मा सभी प्राणियों का सुहृदय अर्थात् मित्र है सर्वभूतानां ज्ञात्त्वा मां शान्तिमृच्छति'।(गीता 5.29) धर्म के परिप्रेक्ष्य में इतना व्यापक दृष्टिकोण अन्य भाषा में दुर्लभ है।

देवस्तुति एवं भक्ति भावना से सम्पृक्त संस्कृत साहित्यकारों के लिए भौतिक वैभव की कामना हेय नहीं है। 'अर्थ' को जीवन का द्वितीय लक्ष्य- 'पुरुषार्थ' स्वीकार किया गया है। महाभारत, कौटिल्य कृत् अर्थशास्त्र, याज्ञवल्क्य-स्मृति एवं पुराणों में कतिपय प्रसंग विशुद्ध अर्थशास्त्रीय है।

संस्कृत साहित्यकार सौन्दर्य और प्रेम के उपासक रहे हैं, अतएव कृतियों में काम, वासना और लालसा को भी पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ है। कालिदासीय शाकुन्तलम् विश्व साहित्य में सौन्दर्य और प्रेम का शिरोमणि ग्रन्थ है, जिसकी जर्मन विद्वान् गेटे ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। कालिदास की लेखनी स्त्री और पुरुष के प्रेमाभिव्यक्ति

के चित्रण में पूर्ण सफल रही है। स्त्रियों के प्रेम में कोमलता और भावुकता स्वाभाविक रूप से विद्यमान होती है, उनमें जब प्रेम का प्रादूर्भाव होता है तो वह उसे व्यक्त करने के लिए शब्दों पर नहीं अपितु सुकुमार भावों पर आश्रित होती है- ''स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु'' (मेघदूतं-1. 29)[4] किन्तु पुरुषों में प्रेमानुभूति वासना के वेग साथ ही उत्पन्न होती है। अभिज्ञानशाकुन्तलम्[5] में पुरूवंशी राजा दुष्यन्त वल्कल वस्त्र धारण करने वाली, आश्रमवासिनी शकुन्तला के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कामासक्त हो जाता है। उसे शाकुन्तला का सौन्दर्य न सूँघा गया पुष्प, नखों से न काटा गया किसलय, न बिंधा हुआ रत्न, रसस्वादन से रहित नवमधु और पुण्यों के अखण्डित फल के समान प्रतीत होता है। दुष्यन्त का वासनाजन्य प्रेम इस प्रकार अभिव्यक्त होता है- ''न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।'' (अभि0 2.10) किन्तु पवित्र गार्हस्थ जीवन में परिणति को ही प्रेम की सार्थकता माना गया है जिसमें परस्त्री- विषयक चिन्तन भी अशिष्टता है- 'अथवाऽनार्यः परदारव्यवहरः' (अभि0 7, पृ0 421) संस्कृत साहित्य में आदर्श प्रेम के साथ ही विशुद्ध श्रृंगारिक रचनाएं भी उपनिबद्ध की गयी हैं, जिनमें कादम्बरी, रत्नावली, विक्रमोर्वशीयं, श्रृंगारशतकं, अमरूशतकं प्रमुख हैं।

संस्कृत कवि प्रेमानुरागी होने पर भी विरक्ति और मोक्ष को जीवन का चरम-लक्ष्य मानता है। वेद, षड्दर्शन, पुराण आर्षमहाकाव्य, बुद्धचरितम्, वैराग्यशतकम्, अनर्घराघव, प्रसन्नराघव जैसी कृतियों का प्रतिपाद्य ईश्वरभक्ति है, जिसकी मूल भावना मोक्ष में निहित है। उपनिषद्[6] में सम्पूर्ण चराचर विश्व को सर्वव्याप्त ईश्वर से परिपूर्ण मानते हुए 'त्यागपूर्वक भोग' करने का आदर्श प्रस्तुत किया गया है- ''ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्'' (ईश0 1) मानव जीवन के सम्पूर्ण पक्षों का सूक्ष्म विवेचन करने वाले संस्कृत साहित्यकारों का मुख्य ध्येय यहीं रहा है- 'जीवन जीने के लिए है, उपभोग के लिए है, उसके आकर्षणों से न तो व्यर्थ आँखें मूँदने की आवश्यकता है, न उसके दायित्वों से कतराने अथवा पलायन करने की आवश्यकता है।..... किन्तु ये आत्यन्तिक रूप से हमारे साध्य नहीं है, इनमें ही हमारी दृष्टि अटक नहीं जानी चाहिए हमारा सबसे बड़ा लक्ष्य है पुनर्भव से मुक्ति और परमानन्द की उपलब्धि।''[7]

प्रवृत्तमार्गी और आशावादी दर्शन को आत्मसात् करने वाला संस्कृत साहित्य नियमतः सुखान्त ही होता हैं। दुःखद और करुणोत्पादक घटनाएँ कतिपय क्षणों के लिए भले ही नैराश्यमय परिवेश का सृजन करती हैं तथापि काव्य का पर्यवसन दुःख में नहीं होता हैं, किन्तु इस आधार पर संस्कृत साहित्य को एकांगी अर्थात् मात्र सुख केन्द्रित मान लेना उचित नहीं है। प्रेम में सर्वस्य समर्पित करने वाले कवि कालिदास और तीन जन्मों तक अमर प्रेम की स्थापना करने वाले कवि बाणभट्ट हैं तो वहीं करुण को एकमात्र रस मानने वाले भवभूति की रचनाएँ अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं- **'एको रसः करूण एवं'** (उत्तर 0 3/47)। उत्तररामचरितम्[8] की मूक वेदना पत्थर को रूला देने में समर्थ है- 'अपि ग्रावारोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' (उत्तर0 1/28)। सुखान्तता संस्कृत साहित्य की मौलिकता है, जो उसे विश्व के अन्य साहित्य से पृथक् करता है।

'रसनीयता' संस्कृत साहित्य की विलक्षण विशिष्टता है। जिसके कारण वह विश्व साहित्य में एक विशिष्ट पद को धारण करता है इसीकारण काव्यात्मा के अन्वेषण में 'रस' को ही सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। सामान्यतः रस का

अर्थ 'आस्वाद' है। उपनिषद् में ब्रह्म को रसरूप में प्रतिपादित किया गया है- 'रसो वै सः। रस ह्येवायं लब्धवानन्दी भवति' (तै0उ0 2.7)। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र[9] में रस-विषयक उद्गार इस प्रकार व्यक्त किये हैं- रस आस्वाद्यमान है- ''रस इति कः पदार्थः? उच्यते- आस्वाद्यमानत्वात्।'' (नाट्य0 अ0 6)।'' रस सभी भावों का मूल है- 'रसः सर्वेषां भावानां मूलम्' (नाट्य0 6.39)। रस के अभाव में कोई अर्थ प्रवर्तित नहीं हो सकता है- ''नहि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते'' (नाट्य0 6.32)। मम्मट[10] ने काव्य को 'ह्लादैककमयी' (आनन्द मात्र की अनुभूति वाला) माना है। साहित्यदर्पणकार[11] रसात्मक वाक्य को काव्य की संज्ञा देते हैं- ''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'' (सा0 दर्पण 1.3)

''वसुधैव कुटुम्बकं'' तथा **''आत्मवत् सर्वभूतेषु''** का उद्घोष करने वाले संस्कृत वाङ्मय में विश्वशान्ति एवं विश्वकल्याण की जो पवित्र और व्यापक विचारधारा प्रादूर्भुत हुई है, वह अन्यत्र किसी भी साहित्य में अप्राप्य है। सहिष्णुता, सद्भावना, त्याग और लोकमंगल को आत्मसात् करने वाली आर्य संस्कृति संस्कृत भाषा में ही प्रस्फुटित होकर विश्व कल्याणार्थ आज भी प्रयत्नशील है। प्राणिमात्र के प्रति उदात्त भावना अथर्ववेद[12] में इस प्रकार अभिव्यक्ति हुई है- ''चाहे शूद्र हो या आर्य सबका प्रिय देखो।'' (प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये- अ0वे0 19.62.1) वेद आज भी सम्पूर्ण मानव जाति को ''सं गच्छध्वं सं वदध्वम्'' (ऋग्वेद 10.191.2) अर्थात् साथ मिलकर चलने और साथ मिलकर बोलने के लिए प्रेरित करते हैं। मंत्रद्रष्टा ऋषियों की यह कामना रही है कि समाज के सभी सदस्यों की मंत्रणा समान हो, समिति अर्थात् सभा में समान हो। अस्तु, संस्कृत साहित्य ऊँच-नीच की भावना से रहित समतावादी अन्तःचेतना की संप्राप्ति के अद्वितीय स्रोत हैं।

निष्कर्षतः संस्कृत साहित्य की मौलिकता उसकी प्राचीनता, व्यापकता, आनन्द-प्रियता, रसनीयता एवं संस्कृति के अद्वितीय रेखांकन में निहित है जो अन्यत्र कहीं भी सहज रूप में प्राप्य नहीं है। मैक्समूलर महोदय का मत है- ''विश्वबन्धुत्व का जो उपदेश हमें इस भाषा में मिलता है वह कहीं भी नहीं मिल सकता। यदि संस्कृत में हमें अन्य कोई उपलब्धि नहीं हुई होती तो भी केवल इसी एक उपलब्धि के सहारे इसकी उपादेयता सर्वाधिक है।'' (हम भारत से क्या सीखे?, पृ0सं0 47)[13]

वर्तमान युग में संस्कृत साहित्य के सम्मुख अनेक चुनौतियाँ उपस्थित हो गयी हैं। वैश्वीकरण के इस युग में विज्ञान एवं संगणक का वर्चस्व स्थापित होने के कारण आंग्ल भाषा अन्ताराष्ट्रिय भाषा के रूप में स्वीकृत सी हो गयी है। व्यावसायिक दृष्टि से संस्कृत भाषा की उपयोगिता गौण होने के कारण यह भाषा जीविकोपार्जन का साधन नहीं रह गयी है। फलस्वरूप संस्कृत प्रेमी विद्यार्थियों की संख्या न्यून होती जा रही है। लोकप्रियता के अभाव के साथ ही संस्कृत साहित्य को प्रचार-प्रसार की कमी का भी सामना करना पड़ रहा है। साहित्य की समीक्षा न होने से नवीन साहित्य की रचनाधर्मिता प्रभावित हुई है। संस्कृत साहित्य के प्रकाशन में धनाभाव, ग्राहकाभाव, विज्ञापनाभाव मुख्य अवरोधक सिद्ध हो रहे हैं। राजनीतिक विद्वेष के कारण भी संस्कृत साहित्य उपेक्षित हो गया है, जैसा कि प्रो0 ओमप्रकाश पाण्डेय[14] का मत है- ''एक ऐसी भाषा, जिसके साहित्य-सौन्दर्य, व्याकरणगतपूर्णता और वैज्ञानिकता, दार्शनिक चिन्तन, नैतिक आदर्श और परिष्कृत जीवन मूल्यों की सराहना समस्त विश्व में उन्मुक्त रूप से हुई, वह अपने ही देश में राजनीति के महारथियों के द्वारा समय-समय पर ठुकराई जाती रही है।''

आज संस्कृत भाषा एवं साहित्य को पुनः गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए उसकी प्रासंगिकता और जीवन्तता पर विचार करना आवश्यक एवं औचित्यपूर्ण है। आर्य संस्कृति और हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूप के ज्ञानार्थ संस्कृत भाषा की पठनीयता अनिवार्य है। विज्ञान की दृष्टि से भी संस्कृत भाषा का महत्व सिद्ध होता है क्योंकि चिकित्सा की महत्वपूर्ण शाखा- 'आयुर्वेद' के सभी मान्य ग्रन्थ संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध है, साथ ही गणित-खगोल-पर्यावरण विज्ञान की मूल उद्भावनाएँ इसी वाङ्मय में निहित है। भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण से तो संस्कृत की महत्ता सर्वज्ञात ही है। संस्कृत न केवल विश्व की प्राचीनतम भाषा है अपितु भारोपीय परिवार की आधारभूत भाषा है। पाश्चात्य विद्वानों-फ्रांसीसी पादरी कोर्दो (1767ई0), सर विलियम जोन्स (1786ई0), कोलब्रुक, फ्रीड्रिखवान श्लेगेल, फ्रान्स बॉप (1816ई0), रूडोल्फ रॉठ, विलियम ड्वाइट ह्विटनी (1867ई0) ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान के लिए संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य माना है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सन्दर्भ में संस्कृत की उपादेयता असन्दिग्ध है। संविधान निमार्ताओं ने हिन्दी व्याकरण और कोश रचना के लिए संस्कृत के आश्रय का निर्देश किया है।

वस्तुतः संस्कृत भाषा बहुविध भान-विज्ञान से सम्पन्न प्रासंगिक और जीवित भाषा है, जिसमें भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्राण समाहित है। अतएव पूर्वाग्रह का त्याग कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसके साहित्य की सूक्ष्म विवेचना की आवश्यकता है। संस्कृत केवल भाषा या धार्मिक ग्रन्थों का भण्डार नहीं है, यह जीवन-दर्शन है, आचार-व्यवहार, विज्ञान है, आनन्द का परममार्ग है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, पं0 दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारड़ी प्रकाशन, 1993
2. मनुस्मृति, सम्पादक - पं0 श्री हरिगोविन्द शास्त्री, चैखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, षष्ठ संस्करण, 2065, वि0सं0
3. गीता-गीता प्रेस, गोरखपुर
4. मेघदूतं (पूर्वमेघ), प्रणेता- तारिणीश झा, प्रकाशन-रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद, संस्करण-2004
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्- लेखक डॉ. कपिल देव द्विवेदी, प्रकाशक- राम नारायण लाल, विजय कुमार, इलाहाबाद, संस्करण-2009 ई.
6. 108 उपनिषद् (ज्ञान खण्ड)- सम्पादक पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्करण 2007ई0
7. महाकवि कालिदास, डॉ. रमाशंकर तिवारी, चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 1999, पृ.सं. 5
8. उत्तररामचरितम्, प्रणेता डॉ. कपिल देव द्विवेदी, प्रकाशक- रामनारायण लाल विजयकुमार इलाहाबाद, संस्करण- 2002 ई.
9. नाट्यशास्त्र- सम्पादक पं. बटुकनाथ शर्मा तथा पं. बलदेव उपाध्याय चैखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी।
10. काव्यप्रकाश- व्याख्याकार - आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण-2004, पृ05

11. साहित्य दर्पण- सम्पादक-डॉ. सत्यव्रत सिन्हा प्रकशन-विद्याभवन, ग्रथमाला, वाराणसी।
12. अथर्ववेद- सं0प0 श्री राम शर्मा आचार्य प्रकाशक- संस्कृत संस्थान बरेली संस्करण-2009
13. हम भारत से क्या सीखे? - एफ0 मैक्समूलर, हिन्दी अनुवादक- श्री कमलाकर तिवारी एवं रमेश तिवारी, प्रकाशक- इतिहास प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद
14. सस्कृत मनीषा के कतिपय नक्षत्र-प्रो0 ओम् प्रकाश पाण्डेय, नाग पब्लिशर्स,दिल्ली।संस्करण-2003 ई0पृ. 214